THE TIMES OF INDIA

Date: 17-09-25

Corn fabulations

Trade talks are welcome, but US trying to arm-twist New Delhi into buying its corn is not.

TOI Editorials

The ink on a US-India trade deal would have dried weeks ago had Trump not derailed negotiations on the pretext of Russian oil. But it seems he has seen the light. His rhetoric has softened, US trade rep Brendan Lynch has paid a visit, and while the Indian side made it clear that yesterday's meeting with Lynch was "not an official round of negotiation", Trump's man certainly wasn't here to "shoot the breeze". His ambassador designate Sergio Gor has also said a deal is imminent.

So, now that we are back at the table, it's worth remembering that Russian oil is only a red herring weaponised for leverage. The US side's goal remains what it was in May, June and July – getting India to lower tariffs on farm imports. US commerce secretary Howard Lutnick's latest grievance – "Why won't 1.4bn people buy one bushel of US corn?...they sell everything to us, and they won't buy our corn..." – should dispel all doubts about US intent.

Corn is a very big deal in Trump-voting states. US produces more than 30% of corn worldwide, but not as food. More than a third of it is turned into ethanol for fuelling cars, around 40% is used as livestock feed, a tiny percentage – 1.5% – goes into breakfast cereals, and about 18% is exported. But with China cutting back on US corn, there's a glut. And after Trump's tirade against high-fructose corn syrup in July, another 3% of US corn demand is in jeopardy. That's why US officials desperately want to palm off some of their surplus on India.

A couple of years ago, India buying corn would have been unthinkable, because of its own considerable surplus. But the recent ethanol-in-fuel mandate has changed that. India is a net importer of corn now, but it can't buy US corn, which is genetically modified. It's a non-negotiable Indian policy that US wants to ride roughshod over. For Lutnick, etc, here's a kernel of fact (interestingly, 'kernel' is derived from 'corn', which is close to 'kan', Sanskrit for particle) – you couldn't arm-twist India with Russian oil, don't start again with corn.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 17-09-25

Judiciary Can't Play Extrajudicial Vigilante

ET Editorials

Being enthusiastic about sending out a strong message against wrongdoing is one thing. It's quite another to be so overenthusiastic that one sidesteps due judicial process altogether for the purpose of virtue signalling. This becomes especially deviant when it's the judiciary that takes on the role of 'extrajudicial' vigilante. Last week, the Supreme Court, while dismissing a sexual harassment case for not being lodged within the mandatory 3-month period, astonishingly ordered that the 'offence' (sic) — described in the dismissed judgment — be part of the defendant's résumé. The addendum is incredible because it subverts the very pillar of modern jurisprudence — one is innocent until proven guilty — and delivers an extrajudicial guilty 'verdict'. The purpose being that the 'crime' he was cleared of 'haunts the wrongdoer (sic) forever'.

This undermining of law by Justices Pankaj Mithal and Prasanna B Varale against the vice-chancellor of West Bengal National University of Juridical Sciences hardly inspires confidence in the highest court of the land, members of which self-righteously dealt out newfangled punishment for an unfound crime. Indeed, it smacks of conflating sin — for which, even when suspected, delivering papal-style punishment is beyond the court's writ — with crime.

This is going down a very slippery, dangerous slope. Today, it's extrajudicial punishment in the form of 'being branded' for suspected sexual harassment the court has legally cleared the defendant of. Tomorrow, a similar 'mystical' conclusion may be drawn for other crimes, murder included. Reputational damage cannot be dealt as a 'bargain' in lieu of harsher punishment. The Supreme Court must remove this absurd, dangerous moral-rousing 'direction'.

दैनिक भास्कर

Date: 17-09-25

हम कृषि उत्पादों को लेकर समझौता नहीं कर सकेंगे

संपादकीय

यूएस ट्रेड दल अपने मुख्य वार्ताकार के साथ भारत में है। उधर आंध्र सीएम ने केंद्र से झींगा उत्पादक किसानों के लिए राहत मांगते हुए बताया कि टैरिफ के कारण अमेरिका के आधे से ज्यादा ऑर्डर रद्द हो गए हैं जिससे 25,000 करोड़ का नुकसान हुआ है। अन्य देशों को भारत से निर्यात भले अगस्त में बढ़ा हो लेकिन यूएस से काफी घटा है। अमेरिकी दबाव है कि भारत अपना कृषि बाजार उसके कृषि उत्पादों, मुख्यतः जीएम मक्का और सोयाबीन के अलावा डेयरी उत्पादों के लिए खोले। लेकिन भारत सरकार का इन उत्पादों को लेकर समझौता मुश्किल लगता है। बिहार और बंगाल में चुनाव हैं और इन दोनों राज्यों में छोटी जोत और पानी का स्तर ऊपर होने के कारण मक्के की उत्पादन लागत भी अन्य कई राज्यों से 35% कम है। जबकि ट्रम्प को सबसे ज्यादा वोट जिन राज्यों से मिले, वे मुख्यतः मक्का उत्पादक हैं। चीन द्वारा अचानक अमेरिकी मक्का और सोयाबीन की खरीद कम करने से ट्रम्प समर्थक किसानों को घाटा हो रहा है। ऐसी

स्थिति में मक्का और सोयाबीन भारत को बेचना ट्रम्प के लिए नाक का सवाल बन गया है। भारत के पास विकल्प के रूप में अमेरिकी जीएम मक्का को सस्ते पशु आहार और एथेनोल के लिए इस्तेमाल करना है। लेकिन पिछले वर्ष भारत में 42 मिलियन टन मक्का (3.5 टन प्रति हेक्टेयर) पैदा हुआ। औसत उत्पादन लागत लगभग 12-16 रु. (यूएस में 15 रु.) है, हालांकि इसका एमएसपी सरकार ने 24 रु. रखा है। कृषि उत्पादों पर सहमति की आशा क्षीण है।

Date: 17-09-25

पीएम मोदी ने वादों के बजाय काम करने वाला तंत्र बनाया

मनसुख एल. मांडविया, (केंद्रीय श्रम एवं रोजगार, युवा कार्यक्रम और खेल मंत्री)

लंबे समय तक प्रधानमंत्री का दायित्व संभालने वाले बहुत ही कम नेताओं ने किसी राज्य में मुख्यमंत्री का दायित्व भी संभाला है। देश के ज्यादातर प्रधानमंत्री 'राष्ट्रीय' स्तर के नेता रहे हैं और उनके पास संघीय स्तर पर काम करने का अनुभव कम रहा है। लेकिन नरेंद्र मोदी इसके चंद अपवादों में से एक हैं।

नीतिगत केंद्रबिंदु के रूप में क्रियान्वयन में मोदी के दृढ़ विश्वास को बिजली क्षेत्र से संबंधित उनके दृष्टिकोण में देखा जा सकता है। गुजरात में उन्होंने देखा कि गांवों में खंभे और लाइनें तो हैं, लेकिन बिजली नदारद है। इसका समाधान उन्होंने ज्योतिग्राम योजना के रूप में निकाला, जिसके तहत फीडरों को अलग किया गया ताकि घरों को 24 घंटे बिजली मिल सके और खेतों को बिजली का एक निश्चित हिस्सा मिल सके। प्रधानमंत्री के रूप में उन्होंने दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना के जरिए इस सिद्धांत को आगे बढ़ाया। 18,374 गांवों को बिजली मिली।

बैंकिंग क्षेत्र में भी इसी सिद्धांत को फिर से दोहराया गया। कागजों में तो ग्रामीण परिवारों के बैंक में खाते थे, लेकिन व्यवहार में वे निष्क्रिय थे। जन-धन ने इस स्थिति को बदल दिया। आधार और मोबाइल फोन को व्यक्तिगत बैंक खातों से जोड़कर एक कमजोर पड़ी व्यवस्था को सीधे धन हस्तांतरण की बुनियाद बना दिया गया। इससे धन बिना किसी बिचौलिए के नागरिकों के हाथों में पहुंचा, बर्बादी पर लगाम लगी और सरकारी खजाने को भारी रकम की बचत हुई।

प्रधानमंत्री आवास योजना ने भुगतान को निर्माण कार्यों से जोड़ा, निगरानी के लिए जियो-टैगिंग का इस्तेमाल किया और बेहतर डिजाइन पर जोर दिया। पिछली सरकारों के अधूरे घरों के उद्घाटन के चलन को पलटते हुए लाभार्थियों को पूरी तरह निर्मित घर मिले।

गुजरात ने मोदी को यह भी दिखाया कि प्रगति किस प्रकार केंद्र और राज्य के बीच समन्वय पर निर्भर करती है। दशकों से अटके पड़े जीएसटी को राज्यों से आम सहमति बनाकर पारित किया गया। जीएसटी परिषद ने राजकोषीय संवाद को

संस्थागत रूप दिया और एक एकीकृत राष्ट्रीय बाजार का निर्माण किया। व्यापार में सुगमता के आधार पर राज्यों की रैंकिंग करके और सुधारों को पुरस्कृत करके प्रतिस्पर्धी संघवाद को भी बढ़ावा दिया।

मोदी के लिए कल्याणकारी योजनाएं उत्पादकता से जुड़ा निवेश रही हैं, जिनका उद्देश्य लाभार्थियों को सशक्त बनाना है। गुजरात के कन्या केलवणी नामांकन अभियान ने महिला साक्षरता को 2001 के 57.8 प्रतिशत से बढ़ाकर 2011 तक 70.7 प्रतिशत कर दिया था। राष्ट्रीय स्तर पर इसे ही बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ कार्यक्रम में परिवर्तित किया गया। इसी प्रकार मातृ स्वास्थ्य के क्षेत्र में गुजरात में चिरंजीवी योजना थी तो केंद्र में प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना।

बुनियादी ढांचे के मामले में, गुजरात के बीआईएसएजी मानचित्रण से संबंधित प्रयोगों को पीएम गति शक्ति के रूप में विस्तारित किया गया, जहां 16 मंत्रालय और सभी राज्य अब एक ही डिजिटल प्लेटफॉर्म पर 1,400 परियोजनाओं की योजना बना रहे हैं।

वाइब्रेंट गुजरात शिखर सम्मेलनों ने दिखाया कि कैसे निरंतर जुड़ाव धारणाओं को बदल सकता है, एक राज्य को निवेशकों की नजर में एक विश्वसनीय निवेश गंतव्य बना सकता है और नौकरशाहों को व्यवसाय के अनुकूल बना सकता है। इसी अनुभव ने 'मेक इन इंडिया' को आकार दिया।

जब भारत 2047 तक विकसित भारत बनने का अपना लक्ष्य हासिल करेगा, तो ऐसा इसलिए संभव हो सकेगा क्योंकि प्रधानमंत्री ने शासन को ही नए सिरे से परिभाषित किया है। क्रियान्वयन को प्रशासन की कसौटी बनाकर उन्होंने भारत की विशाल मशीनरी को वादों से हटाकर काम करने वाली मशीनरी में बदल दिया है। यही नरेंद्र मोदी की निर्णायक विरासत है।

मुख्यमंत्री के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान मोदी ने देखा कि योजनाएं अंतिम छोर पर क्यों विफल या सफल होती हैं। इसने उन्हें शासन के केंद्र में महज नीति-निर्माण के बजाय क्रियान्वयन को रखने वाला प्रधानमंत्री बनाया।

दैनिक जागरण

Date: 17-09-25

मतांतरण रोधी कानून

संपादकीय

विभिन्न राज्यों के मतांतरण रोधी कानूनों को चुनौती देने वाली याचिकाओं पर सुप्रीम कोर्ट की ओर से संबंधित राज्यों को नोटिस देना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश, गुजरात आदि के मतांतरण रोधी कानूनों को

जमीयत उलमा ए हिंद और सिटीजन फार जस्टिस एंड पीस जैसे संगठनों ने यह कहते हुए चुनौती दी है कि ये कानून अलग-अलग पंथों से संबंधित जोड़ों को परेशान करने का जरिया बन गए हैं।

इन संगठनों की ओर से चाहे जो कहा जाए, सच यह है कि देश में कई समूह छल-कपट और लोभ-लालच से मतांतरण कराने में लगे हुए हैं। वास्तव में भारत शातिर इरादों से कराए जाने वाले मतांतरण का भुक्तभोगी है। छल-छद्म से मतांतरण अभियान स्वतंत्रता के बाद से ही शुरू हो गए थे। ऐसे अभियान ईसाई मिशनरियों की ओर से शुरू किए गए और उन्होंने पहले पूर्वोत्तर राज्यों की जनजातियों को निशाना बनाया और फिर मध्य प्रदेश, ओडिशा जैसे राज्यों के जनजातीय बहुल इलाकों को।

क्या यह किसी से छिपा है कि पूर्वोत्तर के साथ मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड और ओडिशा में न जाने कितने आदिवासी ईसाई बन चुके हैं। ऐसा कोई दावा हास्यास्पद ही होगा कि ये गरीब-अशिक्षित लोग अंतःप्रेरणा से ईसाई बने। ईसाई मिशनरियां किस तरह बेलगाम हैं, इसका पता पंजाब में उनकी सक्रियता से चलता है।

जैसे मतांतरण कराने वाली ईसाई मिशनरियों को सारी दुनिया के लोगों को यीशु की शरण में लाने की सनक सवार है, वैसे ही कुछ इस्लामी संगठन यह जिद पकड़े हैं कि सभी को दीन की राह पर चलना चाहिए। यह एक तथ्य है कि दीन की दावत देने के लिए दावा सेंटर चलाए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त कुछ मजहबी कट्टरपंथी तत्व भी लोगों का छल-बल से मतांतरण कराते हैं।

इसका एक उदाहरण कुछ समय पहले उत्तर प्रदेश के बलरामपुर में छांगुर बाबा के काले कारनामे से मिला था। ऐसे तमाम उदाहरणों के बाद भी यदि कुछ लोगों को लगता है कि मतांतरण रोधी कानून धार्मिक स्वतंत्रता का हनन करने वाले हैं तो इसका मतलब है कि वे मुगालते में हैं। ऐसे लोगों को यह भी लगता है कि लव जिहाद एक कपोल कल्पना है। उन्हें इससे परिचित होना चाहिए कि यह शब्द केरल हाई कोर्ट की देन है।

उसने अंतर धार्मिक विवाह के कई मामलों में यह पाया था कि युवतियों को मतांतरित करने के लिए उन्हें प्रेमजाल में फंसाया गया। बाद में ऐसे मामले देश के अन्य हिस्सों से सामने आने का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह थमने का नाम नहीं ले रहा है। ऐसे कुछ मामलों में दोषियों को सजा भी हो चुकी है, लेकिन इसके बाद भी कुछ लोग यह कहते हैं कि ऐसा कुछ नहीं है। वस्तुतः इसी कारण एक के बाद एक राज्यों को मतातंरण रोधी कानून बनाने पड़े हैं।

जनसत्ता

Date: 17-09-25

दलहन में आत्मनिर्भरता की दरकार

मनीष अग्रहरि

यह आश्चर्यजनक है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है, फिर भी यहां लोगों की थाली में जो दाल रहती है, वह जरूरी नहीं कि स्वदेशी ही हो। संभावना है कि वह किसी दूसरे देश से अच्छे-खासे दामों में आयात की गई हो। इससे खुदरा बाजार में हम महंगी दाल खरीदने के लिए विवश हो जाते हैं। दूसरी तरफ, इससे देश को राजस्व का नुकसान भी झेलना पड़ता है। एक आंकड़े के मुताबिक, बीते वर्ष इकतीस करोड़ से अधिक कीमत की दाल आयात की गई है। देश का दलहन आयात विगत छह वर्षों में बढ़ कर चौरासी फीसद तक जा पहुंचा है।

देश में कुल खपत की लगभग चौदह फीसद दाल विदेश से आयात की जाती है। म्यांमा, मोजांबिक, तंजानिया, आस्ट्रेलिया और कनाडा जैसे देशों से मुख्य रूप से दालों का आयात किया जाता है। यह स्थिति तब है, जब भारत दुनिया के प्रमुख दाल उत्पादक देशों में शामिल रहा है। हमारे यहां दाल की खपत विश्व की कुल खपत का करीब सत्ताई फीसद है। देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में दलहनी फसलों की हिस्सेदारी लगभग बीस फीसद तक है। चालू वित्तीय वर्ष में देश में सड़सठ लाख टन विभिन्न दालों का आयात किया गया, जो अब तक का सर्वाधिक है और इसमें पीली मटर की हिस्सेदारी सबसे ज्यादा इकतीस फीसद तक है।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि वर्ष 2025 के अंत तक पीली मटर का आयात 20.4 लाख टन तक पहुंच जाएगा, जबकि 2024 में यह 11.6 लाख टन था। पीली मटर के अलावा चना, मसूर, उड़द और अरहर दाल के आयात में तेजी से उछाल देखा गया है। अगर हम विश्व की कुल दलहन उत्पादकता की बात करें, तो भारत के बाद म्यांमा, कनाडा, चीन, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका में दाल की सर्वाधिक पैदावार होती है। पिछले वर्ष कनाडा साठ लाख सत्तर हजार मीट्रिक टन दाल उत्पादन के साथ विश्व का एक प्रमुख दाल उत्पादक देश बन कर उभरा, जबकि एक दशक पूर्व उसका उत्पादन बीस लाख मीट्रिक टन से भी कम था। कनाडा की यह वृद्धि दालों की बढ़ती वैश्विक मांग की पूर्ति से होने वाली कमाई और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाने के परिणामस्वरूप हुई है।

दूसरे देशों में दालों के बढ़ते रकबे पर एक रोचक तथ्य यह है कि वर्ष 1970 के दशक के मध्य में भारत ने आस्ट्रेलिया को कुल 400 ग्राम दलहनी फसलों का बीज दिया था और अगले एक दशक में वहां नब्बे लाख हेक्टेयर जमीन में दलहन की खेती की जाने लगी। आज स्थिति यह है कि हम आस्ट्रेलिया से स्वयं दाल आयात करने लगे हैं।

हालांकि, केंद्र सरकार किसानों को दलहन सहित अन्य खाद्यान्नों का उचित मूल्य दिलाने के लिए कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की सहायता से न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) की घोषणा करती है। इसके तहत प्रयास होता है कि फसल उत्पादन की लागत से कम से कम डेढ़ गुना से अधिक दाम किसानों को मिले। मूंग, उड़द, मसूर, अरहर और चना की फसलें भी उन तेईस फसलों में शामिल हैं, जो एमएसपी के तहत आती हैं। न्यूनतम समर्थन मूल्य का चलन वर्ष 1966 से है। शुरुआत में यह सिर्फ गेहूं और धान के लिए था, मगर बाद में इसमें कई अन्य फसलों को भी शामिल किया गया।

देश में दलहनी फसलों का रकबा बढ़ाने के लिए केंद्र सरकार वर्ष 2007 से राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन योजना चला रही थी, जिसे 2024-2025 में बदल कर राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा एवं पोषण मिशन कर दिया गया है। इस योजना के तहत

उच्च उत्पादन वाली उन्नत प्रजातियों का इस्तेमाल, उन्नत विधियों का प्रदर्शन, एकीकृत पोषक तत्त्व, कीट एवं रोग प्रबंधन और उन्नत कृषि यंत्रों को प्रचलन में लाकर प्रगतिशील खेती करने के लिए अनेक कृषि उपकरणों पर अलग-अलग राज्यों द्वारा कमोबेश पचास फीसद या उससे अधिक सबसिडी प्रदान की जाती है। इस योजना के तहत फसल के दौरान प्रशिक्षण के माध्यम से किसानों की क्षमता निर्माण समेत अन्य आवश्यक पहलुओं पर भी काम किया जाता है। इन सबसे इतर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद समेत अन्य अनुसंधान संस्थान सभी दलहनी फसलों पर अनवरत शोध एवं विकास कर रहे हैं। विगत दस वर्षों में दलहनी फसलों की व्यावसायिक खेती के निमित्त 343 उच्च उपज वाली विभिन्न किस्मों और हाइब्रिड किस्मों को आधिकारिक तौर पर मान्यता दी गई है। गुणवत्तापूर्ण दलहन के बीजों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए 150 बीज केंद्रों की स्थापना की गई है।

दलहनी फसलों को बढ़ावा देने के सरकार के अनेक प्रयासों के बावजूद अगर दलहन का आयात बढ़ता जा रहा है, तो इसका मुख्य कारण किसानों का इन फसलों को अपनाने के लिए आगे न आना, जागरूकता के अभाव में नवाचारों को न अपनाना तथा जंगली जानवरों द्वारा फसलों को नष्ट कर देना है। एक और बड़ा कारण देश के अनेक हिस्सों में दलहनी फसलों का सिर्फ वर्षा आधारित खेती पर निर्भर होना है। हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन के कारण अनियमित वर्षा एवं सूखा आम बात हो गई है, इससे मूंग, उड़द, काला चना और अरहर दाल जैसी फसलें सिमटती जा रही हैं, जो कुल दलहनी फसलों का लगभग चालीस फीसद तक है।

एक सर्वे के मुताबिक, देश में दाल के लिए सालाना बोए जाने वाले ढाई करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल में से लगभग पंद्रह फीसद ही सिंचित क्षेत्र है, जबकि इसके ठीक उलट गेहूं और गन्ना के लिए 90-95 फीसद तक सिंचित क्षेत्रफल है। प्राय: देखने में आता है कि अब अगर किसानों को सिंचाई की सुविधा भी मुहैया होती है, तो भी वे दलहनी फसलों से मुंह मोड़ रहे हैं। जबकि दलहनी फसलें अपने अद्वितीय गुणों के कारण अन्य सभी फसलों से बिल्कुल अलग हैं।

कृषि विशेषज्ञों के मुताबिक, अधिकांश दलहनी फसलें अपने पचहत्तर फीसद नाइट्रोजन की पूर्ति जड़ों से कर लेती हैं, इसकी वजह इनकी जड़ों में पाई जाने वाली गांठों में राइजोबियम नामक जीवाणु है। ये जीवाणु नाइट्रोजन को खेत में पहुंचा देते हैं। इससे एक ओर जहां दलहनी फसलों को इसकी पूर्ति हो जाती है, तो दूसरी ओर आगामी फसल के लिए भी मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन बच जाती है।

इस तरह से किसानों को यूरिया के रूप में एक बड़े खर्च की बचत हो जाती है, जिससे लागत में कमी आती है। दलहनी फसलों के पौधे फैल कर बढ़ते हैं, जिससे ये मृदा को आवरण प्रदान करते हुए उसके कटाव को रोकते हैं। दलहनी फसलों के अवशेष को हरी खाद के रूप में प्रयोग कर मृदा में जीवांश पदार्थ की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इतने फायदे होने के बाद भी यदि देश को दालों का आयात करना पड़ रहा है, तो इसे किसानों में जागरूकता का अभाव ही कहा जाएगा।

किसानों को कृषि में हो रहे नवाचारों जैसे उन्नत सिंचाई विधियों, उन्नत प्रजातियों का विकास और उन्नत तकनीकों का प्रयोग करते हुए दलहनी फसलों के उत्पदान के लिए आगे आना चाहिए। किसान अपने उत्पादक संगठनों के माध्यम से बिचौलियों की भूमिका को कम कर फसल को सीधे बाजार में बेच सकता है। इससे उन्हें अच्छे दाम मिलेंगे और परिणामस्वरूप दलहनी फसलों का उत्पादन उनके लिए निश्चित रूप से मुनाफे का सौदा होगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 17-09-25

सुप्रीम कोर्ट का इनकार

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने आखिर, अपने अंतरिम आदेश में पूरे वक्फ संशोधन अधिनियम, 2025 रोक लगाने से इनकार कर दिया। परंतु अदालत के समक्ष प्रस्तुत याचिकाओं में जिन प्रावधानों को लेकर आपत्तियां थीं, उन पर रोक जरूर लगा दी। गौरतलब है कि शीर्ष अदालत द्वारा मई के अंत में यह फैसला सुरक्षित रख लिया गया था। सरकार का मत है कि नया कानून वक्फ बोर्डों में सुधार और पारदर्शिता निश्चित करने वाला है। परंतु इस संशोधन को असंवैधानिक बताने और मुसलमानों की संपत्ति हड़पने की मंशा रखने वाला बताने वालों ने सौ से ज्यादा लोगों ने याचिकाएं लगाई थीं।

अदालत के अनुसार केंद्रीय वक्फ काउंसिल में चार से अधिक सदस्यों की संख्या नहीं हो सकती जबकि राज्य के बोर्ड में तीन सदस्य होंगे। जिलाधिकारी को घोषित वक्फ संपत्ति के सरकारी होने न होने के विषय में तय करने का अधिकार भी नहीं होगा। इस कानून का विरोध करने वालों को सबसे ज्यादा आपत्ति जिलाधिकारियों को दिए गए इसी अधिकार को कर थी जिसके अनुसार डीएम वक्फ के दावे वाली सरकारी जमीन के बारे में मसौदा सरकार को भेज सकता है, जिसे सरकार द्वारा स्वीकार करने के उपरांत राजस्व रिकॉर्ड में वह भूमि या संपत्ति सरकारी के तौर पर दर्ज की जा सकेगी। काउंसिल के दो गैर-मुसलमानों और महिला सदस्यों को लेने पर भी मुसलमानों को आपत्ति रही है। जैसा कि माना जाता है यह संपत्ति अल्लाह के नाम पर या धार्मिक/ परोपकार के मकसद से दान की जाती है। धर्मस्थलों की आड़ में सरकारी या लंबे अरसे से खाली पड़ी जमीनों पर अतिक्रमण की घटनाएं देश में न अनूठी हैं, न ही नई। इस सरकार का वक्फ या मस्जिदों को निशाने पर रखने का मकसद किसी से छिपा नहीं है।

वक्फ की संपत्ति की खरीद-फरोख्त नहीं होती, न ही इसका हस्तांतरण होता है। देश भर में वक्फ बोर्ड के पास तकरीबन पौने नौ लाख संपत्तियां बताई जाती हैं जिनकी कीमत एक लाख करोड़ रुपये से अधिक आंकी गई है। यह सरकारी लापरवाही और वोटों के लोभ में समुदाय विशेष को दिए गए संरक्षण का ही नतीजा है जो सरकारी संपत्तियों या भूमि पर अवैध कब्जा होता रहता है। सरकार को भी इसकी कीमत चुकानी होगी। विशेष धर्म के आधार पर कोई कानून बनाने की बजाय निष्पक्ष कानून बनाए जिसकी जद में हर धर्म आता हो। कहना होगा अतिक्रमणों को मुक्त कराने के प्रति राज्य सरकारों को मुस्तैद होना ही चाहिए।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 17-09-25

फिर कुदरती कहर

संपादकीय

हिमाचल, पंजाब, उत्तराखंड और जम्मू-कश्मीर में बादल फटने और भारी बाढ़ से बर्बादी के पुराने मंजर अभी हमारी स्मृतियों से ओझल भी नहीं हुए थे कि एक बार फिर सोमवार देर रात से लेकर मंगलवार सुबह तक हिमाचल व उत्तराखंड में कुदरत ने तबाही के नए दृश्य गढ़ दिए। उत्तराखंड की राजधानी देहरादून के सहस्रधारा और मालदेवता में बादल फटने, भारी बारिश और सौंग व तमसा नदी में आई अचानक बाढ़ ने जान-माल को काफी क्षति पहुंचाई है, तो हिमाचल में जगह-जगह से भू-स्खलन और बसों के नदी में बहने की सूचनाएं मिल रही हैं। देहरादून में सौंग नदी की लहर इतनी वेगवान हो गई कि वह सड़कों और पुलों को बहती चली गई। देहरादून- मसूरी और देहरादून हरिद्वार मार्ग इससे काफी प्रभावित हुए हैं। संतोष की बात है, जिला प्रशासन मुस्तैद रहा और पूरी रात लोगों को राहत पहुंचाने व खतरे की जगहों से सुरक्षित स्थान पर ले जाने का काम चलता रहा। चिंता की बात यह है कि अब तक ऊंचे पहाड़ी इलाकों में बादल फटने की घटनाएं घटती रही हैं, पर अब सहस्रधारा जैसे मैदानी क्षेत्रों को भी इसका प्रकोप झेलना पड़ रहा है। निस्संदेह, इस नुकसान का सटीक आकलन मानसून के खत्म होने के बाद ही हो सकेगा, जब नदियों की धारा अपने पुराने स्वरूप में लौटेगी और बह गए मकानों दुकानों और संस्थानों का सूक्ष्म लेखा-जोखा होगा। मगर इस वर्ष कुदरती कहर जिस तरह टूटा है, उससे न सिर्फ शासन तंत्र को, बल्कि नागरिक समाज को भी अनिवार्य रूप से सबक लेने की जरूरत है। शासन-तंत्र को गंभीरता से सोचना पड़ेगा कि पर्वतीय इलाकों की विकास योजनाएं बनाते समय अब क्या-क्या सावधानियां अपनाई जाएं। खासकर ग्लोबल वार्मिंग के दुष्प्रभाव से ग्लेशियरों में हो रहे परिवर्तनों पर सुदीर्घ चिंतन की जरूरत है। पहाड़ी इलाकों में मानव गतिविधियों से वहां की पारिस्थितिकी प्रभावित होती है, इसे जानने के लिए अब किसी नजूमी की जरूरत नहीं है। इसलिए एक दीर्घकालिक नीति अपनाने की जरूरत है।

हमारे नागरिक समाज को यह सीखने की जरूरत है कि मानसून के दौरान तफरीह के लिए ऐसे संवेदनशील इलाकों में न जाएं। भारतीय परंपरा में चतुर्मास की आध्यात्मिक अवधारणा यही संकेत करती है कि हमें कुदरत को चुनौती देने की हिमाकत नहीं करनी चाहिए। इन दिनों में भू-स्खलन और अतिवृष्टि की घटना पहले भी होती थी। लेकिन तब मानसून के दौरान मनुष्यों की आवाजाही थम जाती थी। मगर भौतिक तरक्की और आर्थिक उन्नति के साथ मानव समाज ने रोमांच का ऐसा मायाजाल रचा कि लोग जोखिम उठाने के प्रति आकर्षित होते गए। नदियों के बहाव क्षेत्र में जाकर बसने के अविवेकपूर्ण फैसले तक लोग प्रकृति से लोहा लेने को आमादा हो गए। अब कुदरत का रौद्र रूप सामने आ रहा है और हमसे बड़ी कीमत वसूलने लगा है। इसलिए आबादी के नियंत्रण के साथ-साथ सैलानियों का प्रबंधन भी बहुत जरूरी हो गया है। जिस तरह से पहाड़ी इलाकों में खास अवसरों पर लोगों का हुजूम उमड़ पड़ता है और उससे वहां की नागरिक व्यवस्थाएं चरमरा उठती हैं, वह भी एक संकेत है कि मौजूदा उपभोक्तावादी संस्कृति को विवेक की कितनी जरूरत है। उत्तर भारत में मानसून चंद दिनों का मेहमान है। तब तक मौसम विभाग की चेतावनियों को न सिर्फ स्थानीय प्रशासन को संजीदगी से लेना होगा, बल्कि लोगों को भी खतरे वाली जगहों पर जाने से बचना चाहिए। नहीं भूलना चाहिए कि विकसित देशों का तंत्र भी कुदरती कहर के आगे बौने पड़ जाते हैं।"